अष्टपाहुड़। दर्शनपाहुड़ की २१वीं गाथा **अब कहते हैं कि यह सम्यग्दर्शन ही सब गुणों में सार है,..** सम्यग्दर्शन, यह धर्म का पहला पाया और (पहला) धर्म का सोपान है।

एवं जिणपण्णत्तं दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढम मोक्खस्स।।२१।।

***अर्थ* – ऐसे पूर्वोक्त प्रकार..** ऊपर कहा न? छह द्रव्य की श्रद्धा, आत्मा की श्रद्धा, ऐसा ऊपर कहा। आत्मा शुद्ध चैतन्य है, उसके सन्मुख होकर निर्विकल्प श्रद्धा (होना), उसका नाम सच्चा, समकित का प्रथम दर्शन है। समझ में आया? **जिनेश्वर देव**

का कहा हुआ दर्शन.. वीतराग परमेश्वर, जिन्हें त्रिकाल ज्ञान है। उन्होंने कहा जो सम्यग्दर्शन, **सो गुणों में और दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीन रत्नों में सार है...** सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र—ऐसी तीन दशा, उसमें भी सम्यग्दर्शन सार है। इसके बिना ज्ञान और चारित्र नहीं होते। समझ में आया ?

और मोक्षमन्दिर में चढ़ने के लिए पहली सीढ़ी है,... मोक्ष का मन्दिर चढ़ने का पहला सोपान है। जिसे आत्मा सर्वज्ञ ने कहा, वैसा आत्मा जिसे पर्याय में पूर्ण प्राप्त करना है, ऐसा जो मोक्ष, उसकी पहली सीढ़ी अथवा सीढ़ी का पहला सोपान सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? जैनदर्शन में जो निर्ग्रन्थ पर्याय वीतराग की और निर्ग्रन्थ लिंग दिगम्बर, वह जैनदर्शन है। उसकी श्रद्धा अन्तर आत्मा में स्वभाव-सन्मुख होकर वीतरागी श्रद्धा प्रगट करना, वह पहला सोपान, मोक्ष की निसरणी का पहला सोपान है।

इसलिए आचार्य कहते हैं कि हे भव्यजीवो ! तुम इसको अंतरंग भाव से धारण करो,... सभी विपरीत मान्यताएँ छोड़कर आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, पुण्य और दया-दान का विकल्प अर्थात् राग, आस्रवतत्त्व, वह तो आस्रव है, उससे भिन्न ऐसा ज्ञानस्वभावी आत्मा, उसका अनुभव करके, उसकी पहले प्रतीति करो। **अंतरंग भाव से धारण करो,...** ऐसा। समझ में आया? **'भावेण'** शब्द है न? **'दंसणरयणं धरेह भावेण'** ऐसा पाठ है। भाव से धारण करो। समझ में आया ?

बाह्य क्रियादिक से धारण करना तो परमार्थ नहीं है,... राग के विकल्प से देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा की हो, नव तत्त्व की श्रद्धा विकल्प, राग से की हो, वह कहीं सारभूत नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? देहादिक की क्रिया तो ठीक परन्तु देव-गुरु, सच्चे देव अरिहन्त, गुरु निर्ग्रन्थ चारित्रवन्त भावलिंगी सन्त और शास्त्र—सर्वज्ञ ने कहे दिगम्बर शास्त्र, वे सच्चे हैं—ऐसी जो श्रद्धा का भाव, वह राग की क्रिया का भाव है। समझ में आया ? वह कहीं वास्तविक समकित नहीं है। परमार्थ समकित नहीं है। समझ में आया ? और समकित जहाँ नहीं है, वहाँ ज्ञान, और चारित्र, व्रत और तप कुछ नहीं हो सकता। ईकाई बिना के शून्य हैं। पहला सोपान ही यह है। पहले के सोपान का ठिकाना न हो और ऊपर चढ़ जाए (ऐसा नहीं होता)। समझ में आया ?

मुमुक्षु : व्रत धारण में आ जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ जाए, यह तो कहा गया। व्रत धारण करे अर्थात् चारित्र हो गया अर्थात् उसे समकित होगा ही। मूढ़ है। धूल भी नहीं। व्रत तो राग है महाव्रत आदि, बारह व्रत आदि तो आस्रवतत्त्व, विकल्प है, आस्रवतत्त्व है। उसे अंगीकार किया, इसलिए वह तो मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : कोई व्रत नहीं लेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन लेता है ? व्रत थे कब ? अज्ञानी को व्रत थे कब ? क्या है सेठीजी ? बराबर है ? आज बोले नहीं।

बाह्य क्रियादिक से धारण करना.. अर्थात् कि व्रत लिये, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा मानी, पंच महाव्रत ऐसे विकल्प से श्रद्धा, वह श्रद्धा है ही नहीं, वह तो मिथ्याश्रद्धा है। काम भारी सूक्ष्म जगत को। समझ में आया ? **धारण करना तो परमार्थ नहीं है,.. 'भावेण'** भावेण के सामने व्याख्या की।

अंतरंग की रुचि से धारण करना मोक्ष का कारण है। अन्तरंग चैतन्यस्वरूप, इन पुण्य, पाप, शुभ-अशुभ विकल्परहित और अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्दसहित ऐसा आत्मा का स्वभाव है। बेहद ज्ञान, बेहद आनन्द, बेहद श्रद्धा, बेहद दर्शनोपयोग / दर्शन, बेहद वीर्य—ऐसे अनन्त चतुष्टय स्वभावस्वरूप आत्मा है। उसकी अन्तरंग रुचि करके सम्यक्त्व धारण करो, क्योंकि वह मोक्ष का पहला सोपान है। आहाहा! कहो, समझ में आया ? दर्शनपाहुड़ है न ? दर्शन तो उसे यह कहा 'दंसणमग्गं' जिनवर का मार्ग बाह्य में दिगम्बर दशा जिसकी हो, अभ्यन्तर तीन कषाय का नाश हो, ऐसी निर्ग्रन्थ मार्ग की, जैनदर्शन का मार्ग और उसे जैनदर्शन कहा जाता है, ऐसी श्रद्धा करने जाए जब, ऐसे तीन दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त और अट्ठाईस मूलगुण के बाह्य विकल्प (हों) और बाह्य में एकदम नग्नदशा, इसका नाम जैनदर्शन, अर्थात् यह वस्तु का स्वरूप। इसकी श्रद्धा करने जाए, वहाँ आत्मा निर्मलानन्द शुद्ध चैतन्य है, ऐसी अनन्त चतुष्टय पर दृष्टि पड़े, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया ? स्वयं महा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द ऐसा स्वभाव यह आत्मा है। ऐसे स्वभाव को पकड़कर अनुभव करके प्रतीति करना, इसका नाम प्रथम सब गुण में सार सम्यग्दर्शन है।

ऐसा वापस उसमें आता है न ? नहीं ? स्थानकवासी में श्लोक आते थे न ? श्लोक

आते थे, भूल गये। सब बोलते न ? प्रथम श्लोक। किसी को याद नहीं होगा। स्थानकवासी कोई होगा और उसमें वापस किसी को याद होगा। ऐई ! नागरभाई ! स्थानकवासी में वह था न ? पहले नहीं आता था ? दर्शनसार है और चारित्रसार है, ऐसा श्लोक आता है। वह सब भूल गये होंगे। यह तो उसमें आता था। '**सारं दंसणणाणं, सारं तप, संयम**' यह '**सारं दंसणणाणं**' (बोले) परन्तु उसे '**सारं दंसणणाणं**' की खबर नहीं होती। भाषा बोले '**सारं दंसणणाणं**' तुम सब उसमें थे या नहीं, उसमें बोलनेवाले ? इन्हें खबर नहीं होती कि '**सारं दंसणणाणं**' अर्थात् क्या ? समझ में आया ? वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे, जाने। '**जिणपण्णत्तं**' कहा है न ? इसलिए वास्तव में तो '**जिणपण्णत्तं**' अर्थात् जब केवलज्ञान हुआ, तब प्ररूपणा करता हैं। इसके बिना तीर्थंकर की प्ररूपणा नहीं हो सकती। समझ में आया ? '**जिणपण्णत्तं**' है न ? वीतराग परमात्मा अन्दर पूर्णदशा-सर्वज्ञदशा हुई, केवल त्रिकाल ज्ञान हुआ, तब उन्हें प्रणीतं- उन्होंने कहा हुआ। इसके बिना तीर्थंकर नहीं कहते, इससे पहले नहीं कहते। समझ में आया ? ऐसा कहते हैं। तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वरपना प्राप्त हुए, पूर्ण त्रिकाल ज्ञान हुआ, तब जो '**पण्णत्तं**' कहा। क्योंकि तब तीर्थंकर को वाणी होती है। उससे पहले वाणी प्ररूपित नहीं करते। ऐसे भगवान सर्वज्ञदेव त्रिकाल ज्ञानी परमेश्वर ने कहा, ऐसा जो वस्तु का स्वरूप, उसे आत्मा के स्वभाव में चतुष्टयरूप से अनन्त ज्ञान पड़ा, ऐसा जो जिनस्वरूप अपना है, उसकी अन्तर में दृष्टि होकर, वेदन-अनुभव होकर, आनन्द के स्वाद के अन्दर ज्ञेय का ज्ञान होकर प्रतीति होना, इसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन रत्न कहा जाता है। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : और विस्तार से...

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना कहा न, ऐई ! यह विस्तार। विस्तार क्या ? पहले आ गया न ? छह द्रव्य की, तत्त्व की श्रद्धा, सात तत्त्व की, नौ पदार्थ की, पंचास्तिकाय की ऐसी श्रद्धा करना, वह तो व्यवहार विकल्प है, राग है। आत्मा उससे भिन्न है। व्यवहार विकल्प श्रद्धा है, भगवान ने कहे छह द्रव्य सच्चे, भगवान सच्चे, यह सब विकल्प है, वह तो राग है क्योंकि वह तो परद्रव्य के ऊपर उसका लक्ष्य है। यहाँ तो स्वद्रव्य के ऊपर लक्ष्य करके -होकर स्ववस्तु में अनन्त ज्ञान और आनन्द स्वयं परमात्मस्वरूप है, उसका ज्ञान होना, तब वह अन्तरात्मा होता है। जहाँ तक राग और पुण्य की क्रिया धर्म है—ऐसा मानता है,

तब तक बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। वह अन्तरात्मा अपना स्वरूप ही परमस्वरूप, परमस्वरूप पूर्ण अनन्त ज्ञान, आनन्द का अन्तरभान होकर, रुचि होकर प्रतीति हुई, उसे सम्यग्दर्शन अथवा वह अन्तरात्मा हुआ, क्योंकि अन्तर में जो स्वरूप था, उसका उसे दशा में भान हुआ। वह पूर्ण परमात्मा पर्याय में साधने को साधक है। समझ में आया? भाई, गजब!

अंतरंग की रुचि से धारण करना मोक्ष का कारण है। सब परसन्मुख का लक्ष्य छोड़कर और भगवान आत्मा, अनन्त-अनन्त आनन्द का धाम, सच्चिदानन्द प्रभु, सत् शाश्वत् आनन्द का धाम, ज्ञान, उसके अन्तर में जाकर, अन्तर अनुभव होकर प्रतीति होना, वह धर्म का पहला सोपान है। इसके अतिरिक्त सब बिना एक के शून्य है। नागरभाई! ऐसा है, भाई! आहाहा! यह २१वीं (गाथा पूरी) हुई।

गाथा-२२

अब कहते हैं कि जो श्रद्धान करता है, उसी के सम्यक्त्व होता है –

***जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहणं।**
केवलिजिणेहिं भणियं सद्दमाणस्स सम्मत्तं।।२२।।

यत् शक्नोति तत् क्रियते यत् च न शक्नुयात् तस्य च श्रद्धानम्।
केवलिजिनैः भणितं श्रद्दधानस्य सम्यक्त्वम्।।२२।।

जो शक्य है वह करो और अशक्य की श्रद्धा करो।
नित केवली-जिन कहें श्रद्धावान के सम्यक्त्व हो।।२२।।

***अर्थ* – जो करने को समर्थ हो वह तो करे और जो करने को समर्थ नहीं हो उसका श्रद्धान करे, क्योंकि केवली भगवान ने श्रद्धान करने को सम्यक्त्व कहा है।।२२।।**

***भावार्थ* – यहाँ आशय ऐसा है कि यदि कोई कहे कि सम्यक्त्व होने के बाद में तो सब परद्रव्य-संसार को हेय जानते हैं। जिसको हेय जाने उसको छोड़ मुनि बनकर चारित्र का पालन करे तब सम्यक्त्वी माना जावे, इसके समाधानरूप यह गाथा है,**

* नियमसार गाथा १५४

जिसने सब परद्रव्य को हेय जानकर निजस्वरूप को उपादेय जाना, श्रद्धान किया तब मिथ्याभाव तो दूर हुआ, परन्तु जबतक (चारित्र में प्रबल दोष है तबतक) चारित्र-मोहकर्म का उदय प्रबल होता है (और) तबतक चारित्र अंगीकार करने की सामर्थ्य नहीं होती।

जितनी सामर्थ्य है उतना तो करे और शेष का श्रद्धान करे, इसप्रकार श्रद्धान करने को ही भगवान ने सम्यक्त्व कहा है।।२२।।

गाथा-२२ पर प्रवचन

अब कहते हैं कि जो श्रद्धान करता है, उसी के सम्यक्त्व होता है.. नियमसार में भी आता है न? १५४। **'जदि सक्कदि कादुं'** १५४ गाथा में आता है, नियमसार। उसमें एक दूसरी जगह टीका में भी आता है। **जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहणं...** ऐसा श्लोक आता है। टीका में आता है, टीका में आता है। अष्टपाहुड़ की टीका में ३३१ पृष्ठ है।

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहणं।
केवलिजिणेहिं भणियं सद्दमाणस्स सम्मत्तं।।२२।।

'केवलिजिणेहिं भणियं' देखो! यहाँ भी रखा है, देखा? केवलज्ञानी परमात्मा हुए, तब उन्होंने ऐसा कहा। आहाहा! भाषा तो देखो! कुन्दकुन्दाचार्य को रखते हैं न कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, भगवान ऐसा कहते हैं, हों!

***अर्थ* – जो करने को समर्थ हो वह तो करे..** आत्मा में शुद्ध श्रद्धा करके, शक्ति होवे उतना स्वरूप का ज्ञान और स्वरूप में स्थिरता करना। भगवान आत्मा परमानन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय आनन्द का पुंज! आहाहा! आत्मा किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का अन्दर में ज्ञान करके और उसकी श्रद्धा करना और उसमें स्थिरता शक्ति होवे तो करना।

और जो करने को समर्थ नहीं हो.. यदि चारित्र की स्थिरता करने की शक्ति न हो... समझ में आया? स्वरूप शुद्ध चैतन्यद्रव्य ज्ञायकमूर्ति है, ऐसा अनुभव में भान होकर

स्वरूप में स्थिरता की शक्ति न हो तो श्रद्धा तो बराबर करना; गड़बड़ करना नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **जो करने को समर्थ नहीं हो..** करने को समर्थ न हो तो **उसका श्रद्धान करे,..** श्रद्धा तो ऐसी रखना कि केवली ने कहा, उस मार्ग को अन्दर में बराबर श्रद्धान करना। समझ में आया? अपने ऐसा मार्ग तो पालन नहीं कर सकते, सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र को जैनदर्शन कहते हैं। यह आया था न? वस्तु का स्वभाव, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें चारित्र की रमणता, वह जैनदर्शन अर्थात् वस्तुदर्शन विश्वदर्शन है और अन्दर में अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प और बाह्य नग्नदशा, उसे जैनदर्शन कहा जाता है। वह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। ऐसा कहते हैं कि इस प्रकार से चारित्र को पालन नहीं कर सके.. हमने तो कहा था कि जैनदर्शन यह है, भाई! परन्तु यह चारित्रस्वरूप में रमणता और उस सहित के अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, पंच महाव्रत के आस्रवतत्त्व का विकल्प, शरीर की दशा नग्न, इस प्रकार यदि पालन नहीं कर सके तो श्रद्धा तो रखना कि मार्ग तो यह है। शिथिल करना नहीं, ऐसा कहते हैं। वे पालन नहीं कर सके और फिर वस्त्र-पात्र रखे और मुनिपना मानने लगे, वे श्रद्धा भ्रष्ट हो गये। समझ में आया? मूल तो यहाँ यह कहना है।

मुमुक्षु : श्रद्धा को बिगाड़ना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बिगाड़ना नहीं। मुनिमार्ग, जैनदर्शन अर्थात् वस्तुदर्शन। वस्तु आत्मा ही जिन है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले, जिन प्रवचन का मर्म।' भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति ही आत्मा है। अन्दर वीतराग अर्थात् उसे राग या द्वेष वस्तु में नहीं है। चैतन्यभगवान आत्मा में राग-द्वेष, पुण्य-पाप के विकल्प जो आस्रव, वे तो अन्दर हैं नहीं। हैं नहीं अर्थात् वीतरागीमूर्ति आत्मा अरूपी ज्ञानघन वीतरागमूर्ति है। उसकी श्रद्धा और उसका ज्ञान और उसकी रमणता की वीतरागदशा (होना) और उसके पंच महाव्रत के विकल्प, उसे उस प्रकार के मुनि को जो हों और उस प्रकार की नग्न-दिगम्बर मुद्रा जिसे हो, दूसरी हो नहीं सकती, ऐसा मार्ग है, उसकी तू श्रद्धा करना, भलीभाँति श्रद्धा करना। अरे! परन्तु इतना सब पालन नहीं किया जा सकता। ऐसा चारित्र होवे तो... न पालन कर सके तो श्रद्धा तो बराबर करना कि मार्ग तो यह है। शिथिल करके दूसरी श्रद्धा करना नहीं। (नहीं तो) मिथ्यात्व हो जाएगा, ऐसा कहते हैं।

मुनिपना ऐसा नहीं होता। हमारे से पालन नहीं हो सकता तो लाओ भाई! वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना माने। समझ में आया? (इस प्रकार) श्रद्धा बिगाड़ना नहीं; नहीं तो मर जाएगा समझ में आया?

यह काल ऐसा है कि हमारे से ऐसा चारित्र पालन नहीं हो सकता, नहीं रहता और इसलिए चारित्र हो, वहाँ तो नग्नदशा ही होती है, उसे वस्त्र-पात्र नहीं होते, उसके लिये बनाया हुआ आहार वह नहीं लेता। ऐसे विकल्प उसे नहीं होते। वह एक बार आहार करे, खड़े-खड़े आहार करे, कहीं पात्र लेकर जाए नहीं,... उपाश्रय में लावे, ऐसा मार्ग वीतराग का नहीं। वापस गुरु को बतावे। अरे! गप्प ही गप्प मार्ग है सब। वीतरागमार्ग से सब भ्रष्ट भेष कर जाता है। समझ में आया? ऐई मलूकचन्दभाई!

गौतम तक डाल दिया है। उपासक में। और आनन्द श्रावक था, उसने संथारा किया था। सब कल्पना से ग्रन्थ रचे हुए। वह कोई शास्त्र भगवान के नहीं हैं। आनन्द ने संथारा किया, बीस वर्ष व्रत पालन किये, भगवान गाँव के बाहर आये हुए। गौतमस्वामी आहार लेने गये, झोली पात्र साफ करके जाए न। सुना है या नहीं। ऐ...भाईलालभाई! सुना है न? ऐई... रिखबदासजी! सुना है या नहीं? गौतम आहार लेने गये थे। आहार लिया हाथ में भार कितना उठाते होंगे। अध मण। मजदूर लगे। मुनि है या मजदूर है? झोली और पात्र और पानी... गये और सुना कि संथारा किया है। वहाँ जाऊँ, गये, पूछा, मुझे अवधिज्ञान हुआ है। नहीं, ऐसा नहीं होता। गौतम गणधर को इतनी भी खबर नहीं थी? बारह अंग की रचना की थी, ग्यारह अंग उपरान्त बारह अंग रचे। उन्हें खबर नहीं हो कि श्रावक को ऐसा अवधिज्ञान होगा? वह कहे, ऐसा नहीं होता, प्रायश्चित लो। गणधर कहते हैं। महाराज! ऐसा तो कहे नहीं, विनयवन्त है। महाराज! सच्चे का प्रायश्चित होता है या खोटे का होता है? खोटे का प्रायश्चित होता है। मैं कहीं खोटा नहीं, मैं तो सच्चा हूँ। गणधर को शंका पड़ी। भगवान के पास गये। आहार-पानी का अध मण का वजन... सब बातें गप्प ही गप्प, झूठ-झूठ। ऐसा नहीं हुआ और ऐसा था नहीं। भगवान को आहार बताया। भगवान को कहा, महाराज! इस प्रकार आनन्द ने कहा, इसलिए किसे प्रायश्चित आवे? अरे! जा। भगवान ने कहा। वहाँ उससे क्षमा, उसकी बात सच्ची है। गणधर आहार-पानी रखे, वहाँ पड़ा रहा होगा अकेला। सम्हालनेवाला

व्यक्ति रखा हो तो साधु... अरे! बात जोड़ दी है न? उपासक में ऐसी बात जोड़ दी है। ऐई! चेतनजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र में है। भगवान को... यह तो उपासक शास्त्र है न? अभी ग्यारह अंग है न? अज्ञानियों ने कल्पित बनाये हुए। साधु मिथ्यादृष्टि हुआ, उसने यह ग्यारह अंग रचे हैं। समकिती ने नहीं और केवली के तो हैं ही नहीं। मार्ग यह है। यहाँ कहा न? मूल संघ से भ्रष्ट हुए, उन्होंने मार्ग को कुचल डाला और दूसरे प्रकार से भेष और दूसरे प्रकार से मार्ग मनवाया, वह सब भ्रष्ट मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....भोग देकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञान का भोग देकर नया वाड़ा खड़ा किया। यहाँ तो दूसरा कहना है, गौतमस्वामी वापस वहाँ क्षमा के लिये गये। तब तक आहार-पानी रहता होगा? कपड़े सम्हाले कौन? कपड़ा ढँका रखा होगा। अरे! ऐसी बात मुनि को? किसे मुनि कहना, इसका भान नहीं होता। मुनि तो अन्तरस्वरूप का अनुभव और आनन्द में झूमते हैं। जिन्हें एक आहार-पानी निर्दोष लेने की वृत्ति उठे। सुनने की, कहने की। इसके अतिरिक्त वस्त्र-पात्र और यह खाने-पीने के लिये लेने जाना और वहाँ खाना, यह मार्ग वीतराग का है ही नहीं। यह तो अज्ञानियों ने-पाखण्डियों ने दूसरा मार्ग चलाया है। ऐई! समझ में आया? मार्ग तो यह है। इसलिए कहते हैं कि ऐसा पालन न कर सके तो शिथिलपना करके श्रद्धा बदलना नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : अनेकान्त है तो भगवान को...

पूज्य गुरुदेवश्री : भले अनेकान्त हो। वस्तु का स्वभाव है तत्प्रमाण होगा या उससे विरुद्ध होगा? ऐसा अनेकान्त होगा? समझ में आया? इसलिए यह गाथा रखी है। आधार दिया, **'केवलिजिणेहिं भणियं'** उसमें (बीस गाथा में) भी ऐसा कहा था **'जिणवरेहिं पण्णत्तं'** भगवान तीन काल के जाननेवाले परमेश्वर, ऐसे तीर्थंकर को वाणी का योग था, तब उन्होंने यह कहा, ऐसा कहते हैं। केवली होने के बाद ऐसा कहा है। समझ में आया? आहाहा! इससे विरुद्ध कहा, वह सब श्रद्धा भ्रष्ट है, मिथ्यादृष्टि है, वह जैन ही नहीं है। ऐ.. नागरभाई!

अपने लालचन्दभाई थे न? वांकानेर, नहीं? वकील थे। कड़क थे, कड़क। साधु, कोई बड़ा आचार्य आया होगा। गृहस्थ आया वह कहे, चलो, भाई सुनने तो आओ। देखो तो सही, कुछ शंका होवे तो प्रश्न करो। यह दिगम्बर हो गये थे, श्रद्धा में। लालचन्द वकील। तुम आओ, बड़े महाराज आये हैं, शंका होवे तो पूछो, तुम्हें यह श्रद्धा बदलनी है तो। यह कहे कि परन्तु मैं तो मुसलमान और श्वेताम्बर की श्रद्धा को दोनों को एक सरीखा मानता हूँ। वह कहे, हाय.. हाय.. ! उसमें लिखा है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में है। मुसलमान की श्रद्धा गृहीतमिथ्यात्व की है, ऐसी इन लोगों की भी गृहीतमिथ्यात्व है। दोनों को गृहीतमिथ्यात्वरूप से समान मानता हूँ। भले मिथ्यात्व के रस में थोड़ा बहुत अन्तर हो परन्तु गृहीतमिथ्यात्वरूप से मैं दोनों को समान मानता हूँ, इसलिए मुझे कुछ पूछने आना नहीं है। लालचन्द सेठ थे, गुजर गये। समझ में आया या नहीं? मोक्षमार्गप्रकाशक में है न? मुसलमान, ईश्वरकर्ता माननेवाले, नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य, श्वेताम्बर और फिर स्थानकवासी, इन सबको अन्यदर्शन में डाला है। ऐई ! जाधवजीभाई ! बहुत वर्ष हुए, अब सुनने बैठे तो सही। ऐसा मार्ग है, भाई ! यहाँ कुछ लज्जा-बज्जा और किसी की शर्म और सिफारिश काम आवे, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं, श्रद्धा करना। यह नहीं किया जा सके तो श्रद्धा तो करना कि चारित्र तो वीतरागीदशा होती है। नग्नदशा बाह्य में हो, उसे अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, आस्रव तत्त्व का यह राग होता है, उसे साधुपना कहा जाता है। उसमें फेरफार मानना नहीं; मानेगा तो श्रद्धा भ्रष्ट हो जायेगा। समझ में आया?

केवली भगवान ने श्रद्धान करने को सम्यक्त्व कहा है। केवली परमात्मा कहते हैं कि ऐसा चारित्र पालन न कर सके, ऐसा मुनिपना पालन-रह न सके (तो) श्रद्धा तो रखना कि मार्ग तो यह है। मुनिपने का मार्ग तो दिगम्बरदशा और वीतरागी अन्तरदशा (होता है)। यह मुनि का मार्ग है; इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं है। समझ में आया?

***भावार्थ* – यहाँ आशय ऐसा है कि यदि कोई कहे कि सम्यक्त्व होने के बाद में तो सब परद्रव्य-संसार को हेय जानते हैं।** आत्मा का भान हो तो आत्मा आनन्दमूर्ति है, पुण्य-पाप के रागरहित है, परद्रव्य से रहित है, ऐसा तो भान होता है। **परद्रव्य-संसार को हेय जानते हैं। जिसको हेय जाने, उसको छोड़ मुनि बनकर...** उसे छोड़े तो मुनि

हो। रखे, तब तक मुनि कैसे कहलाये? **चारित्र का पालन करे, तब सम्यक्त्वी माना जावे,..** ऐसा चारित्र करे, रागादिक को हेय जाने, गृहस्थाश्रम में स्त्री, कुटुम्ब छोड़े तो ऐसा मुनिपना होता है, तो जाने कि उसे समकित है—ऐसा अज्ञानी का तर्क है। समझ में आया?

जिसको हेय जाने उसको छोड़ मुनि बनकर चारित्र का पालन करे तब सम्यक्त्वी माना जावे,.. जिसे हेय जाना, उसे आचरे तो उसको समकित कैसा? ऐसा अज्ञानी का तर्क है। बहुत समय से उन मगनभाई का प्रश्न था। यह जाना है कि राग हेय है तो उसे राग होता क्यों है? कहते थे न यह प्रश्न? सुरेन्द्रनगर, मगनलाल तलकशी, वह कहे, आत्मा में जाना कि आत्मा तो विकल्प और रागरहित है तो फिर ज्ञानी को राग होता कैसे है? विषय की वासना का राग कैसे होता है? जिसे हेय जाना है, शुभराग को हेय जाना है, उसे उसका भाव होता कैसे है? इतनी श्रद्धा ढीली है। ऐसा कहते थे। मगनभाई ऐसा पूछते थे। वैसे तो विचारक थे और वांचन करते थे। ऐसा नहीं। चारित्र पालन नहीं कर सके, मुनिपना नहीं ले सके, इसलिए समकित नहीं होता – ऐसा नहीं है।

राजा श्रेणिक क्षायिक समकिती, देखो! चारित्र तो नहीं, व्रत तो नहीं परन्तु मरने के समय जरा विकल्प भी ऐसा आया कि आत्मघात किया। परन्तु उन्हें अन्दर में ज्ञातादृष्टापना है। उदय ने उदय का काम किया, देह ने देह की क्रिया का किया और आत्मा ने आत्मा का काम किया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कहो, समझ में आता है या नहीं इसमें? ऐई! हिम्मतभाई!

इसके समाधानरूप यह गाथा है,... देखो, कोई कहे कि भाई! सम्यग्दर्शन हो, आत्मा पूर्णानन्द प्रभु वीतरागस्वरूप का भान हो, निर्दोष स्वभाव आत्मा का है, उसमें सदोषपना नहीं है, ऐसा भान हो तो सदोष को छोड़े तो समकिती कहलाता है। सदोष रखे तो समकिती कैसे कहलाये? ऐसा अज्ञानी का प्रश्न है। जो सर्प को सर्प जाने, वह सर्प को पकड़ता क्यों है? ऐसा प्रश्न किया था। वह राग को, पुण्य-पाप को छोड़नेयोग्य मानता है, वह पुण्य-पाप करता कैसे है? उसे पुण्य-पाप होते कैसे हैं? ऐसा कहता है। अरे! सुन।

जिसने सब परद्रव्य को हेय जानकर निजस्वरूप को उपादेय जाना,.. श्रद्धान

किया। यह रागादि हेय हैं, पुण्य–पाप का विकल्प–वृत्ति उठती है, वह आदरणीय नहीं है, शुद्ध आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु सच्चिदानन्द ही आदरणीय है। ऐसा अन्दर भान हुआ तो **मिथ्याभाव तो दूर हुआ,..** राग मेरा है और राग से मुझे कल्याण होता है—ऐसा मिथ्यादृष्टिपना, वह तो मिटा है। समझ में आया? **सब परद्रव्य को हेय जानकर निजस्वरूप को उपादेय जाना,..** क्या कहा? विकल्पमात्र दया, दान, व्रत का राग, वह हेय है – छोड़नेयोग्य है। आत्मा भगवान एक ही आदरणीय है। सच्चिदानन्द निर्मलानन्द प्रभु वीतरागमूर्ति आत्मा निर्दोष स्वभाव का कन्द, आत्मा अर्थात् निर्दोष स्वभाव का रस, वही आदरणीय है और राग आदरणीय नहीं है। ऐसा जिसने जाना, श्रद्धान किया, **तब मिथ्याभाव तो दूर हुआ,..** मिथ्याश्रद्धा तो गयी। राग आदरणीय है, ऐसी मान्यता तो गयी। राग छोड़नेयोग्य है और भगवान आत्मा पूर्णानन्द आदरणीय है, उसमें मिथ्याश्रद्धा तो गयी। समझ में आया?

परन्तु जबतक (चारित्र में प्रबल दोष है तबतक) चारित्र–मोहकर्म का उदय प्रबल होता है (और) तबतक चारित्र अंगीकार करने की सामर्थ्य नहीं होती। अर्थात् कि चारित्रमोह का उदय होता है और उसमें जुड़ान होता है, इसलिए चारित्र अंगीकार करने की शक्ति नहीं होती। कहो, समझ में आया? **जितनी सामर्थ्य है, उतना तो करे...** शक्ति में जितना स्वरूप में स्थिरता का होता है, उतना पुरुषार्थ वह करे **और शेष का श्रद्धान करे,...** आत्मा में अन्दर अनुभव के आनन्द में स्थिर होना। समझ में आया? वही चारित्र है और वही मोक्ष का मार्ग है, ऐसी उसकी श्रद्धा तो करना।

इस प्रकार श्रद्धान करने को ही भगवान ने सम्यक्त्व कहा है। ऐसी जो अन्तर में श्रद्धा करे, उसे परमेश्वर ने समकित कहा है। भले चारित्र पालन नहीं कर सके। संसार में हो, छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में विषय की वासना में ज्ञानी दिखायी दे, परन्तु उस वासना को हेय जानकर, आनन्द को उपादेय जाना है। ऐसा मिथ्याभाव जिसके टल गया है और सच्ची श्रद्धा हुई है। ऐसी श्रद्धा करनेवाला कहीं बचाव नहीं करता कि मुझसे नहीं होता, इसलिए चारित्र होवे तो समकित कहलाये अथवा वह चारित्र न होवे तो क्या बाधा है? समझ में आया? ऐसा नहीं है। चारित्र होवे, वही मोक्ष का मार्ग है, परन्तु मुझसे चारित्र की उग्रता नहीं हो सकती। मुझमें वह योग्यता नहीं है। छहढाला में आता है या

नहीं? 'चारित्र मोहवश लेश न संयम पै सुरनाथ जजै हैं।' संयम नहीं है परन्तु संयम की (भावना है)। उसमें आया था न? चेतन दृग। संयम धारने की चटाचटी। समकिती को संयम धारण करने की चटाचटी है, परन्तु कर नहीं सकता।

ऋषभदेव भगवान तीन ज्ञान के धनी, क्षायिक समकिती, तिरासी लाख पूर्व तक चारित्र नहीं था। तिरासी लाख पूर्व किसे कहना? एक पूर्व में सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। ऐसा एक पूर्व। ऐसे तिरासी लाख पूर्व गृहस्थाश्रम में रहे। चारित्र नहीं था। क्षायिक समकित था, तीन ज्ञान थे।

श्रेणिक राजा (को) क्षायिक समकित था। रानियाँ थीं, राज्य था। उनका राग था, उसे छोड़ नहीं सके। समझ में आया? परन्तु समकित है, वह क्षायिक समकित था। नरक में गये, चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में। वहाँ भी तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। वहाँ अभी भी तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। पण्डितजी! पहले नरक में तीर्थंकरगोत्र बाँधे? बाँधे। यहाँ से शुरुआत करके वे प्रतिसमय बाँधते हैं। क्या कहा? तीर्थंकरगोत्र जब से वह बँधती है, तब से ऐसी की ऐसी चालू रहा करती है ठेठ जब आठवें गुणस्थान में जायेंगे तब बन्ध होगा। आगामी भव में जब केवल (ज्ञान) प्राप्त करने की तैयारी होगी, क्षपकश्रेणी चढ़ेंगे, तब तक चलेगा। ऐ.. देवीचन्दजी! क्या कहा समझ में आया? नरक में है, बुरी लेश्या है, तथापि समय-समय में तीर्थंकरगोत्र के परमाणु का बन्धन उसे हुआ करता है। शुरु यहाँ से किया था। शुरुआत कहीं नरक में नहीं होती। वह तो केवलज्ञानी और तीर्थंकर और श्रुतकेवली के समीप में क्षायिक समकित शुरु होता है। समझ में आया? तथापि अभी तीन कषाय है। चारित्र आंशिक (मुनि के योग्य) नहीं है, श्रावक के व्रत और शान्ति चाहिए, श्रावक के योग्य अन्दर शान्ति चाहिए, वह भी नहीं है। पंचम गुणस्थान की जो शान्ति चाहिए, वह नहीं है, तो भी श्रद्धा ऐसी दृढ़ हुई है, पक्की क्षायिक (हुई है) कि उसमें चारित्र नहीं होने पर भी वह क्षायिक समकित निर्जरा करता है। आहाहा!

अज्ञानी व्रत और तप (करके) मरकर गल जाए बेचारा, क्लेश करके महीने-महीने के अपवास करे, समझ में आया? आजीवन ब्रह्मचर्य (पालन करे), बेचारा सूख जाए परन्तु मिथ्यात्व को समय-समय पोसता जाता है। निर्जरा तो नहीं परन्तु अनन्त संसार समय-समय में बढ़ता जाता है क्योंकि राग से धर्म मानता है और क्रिया, वह मेरी

है—ऐसा मानता है। पंच महाव्रत, वे धर्म हैं-ऐसा मानता है, इसलिए अज्ञानी को समय-समय में मिथ्यात्व का बन्धन अनन्त संसार का बढ़ता जाता है। यह तो कुछ अन्तर! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर का प्रत्याख्यान भी नहीं था। प्रत्याख्यान था, परद्रव्य को, राग को आदरना नहीं, यह। परद्रव्य और राग आदरणीय नहीं है, यह इसका प्रत्याख्यान था। मिथ्यात्व का त्याग था, प्रत्याख्यान कहो या त्याग कहो। अन्दर मिथ्यात्व का त्याग था। कहा न अन्दर!

मिथ्याभाव तो दूर हुआ,... राग का विकल्प भी सूक्ष्म है, वह आदरणीय है, यह मान्यता ही मिथ्यादृष्टि / अज्ञानी की है। वह भाव मिटा, यह कहीं कम बात है? वह मिटा, इसलिए अनन्तानुबन्धी की स्थिरता-शान्ति हुई, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! क्या हो? लोगों ने ऐसा मार्ग कर डाला है न कि इस सत्य को मार्ग में-श्रद्धा में आना उन्हें कठिन हो गया है। समझ में आया? ज्ञान का फल विरति है, ऐसा कहते हैं। जिसे सच्चा ज्ञान हुआ हो, उसे विरति / चारित्र आता ही है परन्तु आवे तब न? ज्ञान हुआ, इसलिए चारित्र साथ ही होता है, ऐसा किसने कहा? इतना स्वरूपाचरण है। समझ में आया?

कहते हैं कि पालन न कर सके तो बचाव नहीं करना कि यह भी मार्ग है। समझ में आया? वस्त्र-पात्र रखकर भी साधुपना पंचम काल में पालन किया जा सकता है, ऐसा नहीं मानना; नहीं तो मर जायेगा। समझ में आया? यहाँ तो ऐसा कहना चाहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य बात को स्पष्ट-स्पष्ट करते हैं। कोई भी सिफारिश-विफारिश यहाँ नहीं चलती। ओहो!

विपरीत श्रद्धा - लकड़ियाँ (उल्टी मान्यता) डालनेवालों का संघ नहीं करना। ऐसा मूलाचार में कहा है। क्योंकि तुझे अकेला न सुहावे तो विवाह कर लेना परन्तु ऐसे कुसंगियों का और मिथ्यादृष्टियों के संघ में रहना नहीं। यह मिथ्यात्व की विपरीतता पुष्ट करेगा। ऐसा कहेगा, ऐसा होता है, होता है। पंचम काल है, कमजोरी है। सबको समान मार्ग होगा? कुछ अपवाद होता है या नहीं? या अकेला चारित्र का-उत्सर्ग का मार्ग

होगा? और अपवाद अर्थात् क्या? वह तो विकल्प उठे, वह अपवाद है। उत्सर्ग तो वीतरागदशा, वह उत्सर्ग है। पंच महाव्रत का विकल्प उठे, वह अपवाद है, परन्तु वस्त्र-पात्र ग्रहण का विकल्प, वह अपवाद है (ऐसा माने), वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया पण्डितजी! ऐसा मार्ग है। मार्ग तो ऐसा है।

मार्ग में अनन्त तीर्थंकरों ने... इसीलिए कहा, **'केवलिजिणेहिं भणियं'** भाई! परमेश्वर ने कहा है न! केवलज्ञान होने के पश्चात् जिन-तीर्थंकर ने कहा है, यह मार्ग अनादि-सनातन ऐसा है और तू इसमें से कुछ गड़बड़ करने जायेगा तो मिथ्यादृष्टि होकर भटक मरेगा। श्रद्धा करना कि मार्ग तो यह है। दिगम्बर होना, मुनिपने में चारित्रदशा की तीन कषाय का अभाव होना। समझ में आया? अट्ठाईस मूलगुण का ही विकल्प, उसे एक बार आहार आदि हो वह हो। दो-दो बार आहार और पात्र फिरे, सवेरे और शाम चाय और दूध (ले, वह मार्ग नहीं है)। समझ में आया?

मुमुक्षु : चार-चार बार लेते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो एक बार या दो बार। कोई कहता था न कि हम आयेंगे, भुजिया बनाकर रखना। कौन कहता था? सूरत में। परन्तु यहाँ कहता था। पालीताणा में कौन अभी कहता था? बहुत लोग बैठे हों। साध्वी आवे। भुजिया बनाकर रखना (ऐसा कहे)। भुजिया समझते हो या नहीं? पकौड़ी। सवेरे रोटी चले परन्तु दोपहर में (भुजिया), सवेरे दूध, दोपहर को रोटी, दोपहर दो बजे भुजिया, शाम को खिचड़ी और कढ़ी। यह तो कोई भिखारी है या साधु है? दो-दो बार आहार खाना और साधु?

यहाँ तो कहते हैं कि दिगम्बर मुनि जो होते हैं, वे एक बार करपात्र में आहार लेते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरी बार आहार नहीं, दूसरी बार पानी नहीं, ऐसा मार्ग है। यह मार्ग पालन न कर सके तो बचाव नहीं करना, श्रद्धा करना। समझ में आया? बराबर है? नागरभाई! अनादि का परमात्मा का कहा हुआ ऐसा मार्ग है। केवली तीर्थंकरदेव ने कहा हुआ यही मार्ग महाविदेह में चालू है। सीमन्धर भगवान परमात्मा यह कह रहे हैं। आहाहा! समझ में आया? बहुत जोर दिया है। उसमें पाठ भी कहा है न? नियमसार, १५४। यहाँ लिखा है नियमसार कुन्दकुन्दाचार्य, लो!

'जदि सक्कदि कादुं जे पडिकमणादिं करेज्ज झाणमयं।' प्रतिक्रमण तो उसे

कहना, अपने सवेरे आया है। ध्यान में, अन्तर आनन्द में रमना, उसका नाम प्रतिक्रमण है। '**सत्तिविहीणो जा जइ**' यदि शक्ति न हो तो '**सद्दहणं चेव कायव्वं**' श्रद्धा सच्ची रखना। नहीं, नहीं यह तो विकल्प यह भी सच्चा प्रतिक्रमण है, भले स्थिर न हो सके, ध्यान में न आया जाए परन्तु विकल्प करना, वह भी एक प्रतिक्रमण है। णमो अरिहन्ताणं कहके बैठे वह भी सामायिक है, ऐसा मानना नहीं। मर जायेगा। णमो अरिहन्ताणं (बोलकर) ऐसा कहे, हमने दो घड़ी सामायिक की। वह तो विकल्प राग है। वह सामायिक कैसी ? समझ में आया ? आहाहा ! सेठी !

सामायिक तो उसे कहते हैं, (कि) आत्मा के आनन्द का स्वाद आवे और शुद्धोपयोग अन्दर हो। समझ में आया ? उसे सामायिक कहते हैं। सामायिक यह दो आसन बिछाये और बैठे और हो गयी (सामायिक)। णमो अरिहन्ताणं। पाप आने नहीं दिये, वह सामायिक। धूल भी सामायिक नहीं है, वह तो असामायिक है। राग की क्रिया, पुण्य का विकल्प, उसे धर्म माने, उसे सामायिक माने। असामायिक को सामायिक माने, वह मिथ्यादृष्टि है। ऐ.. सुजानमलजी ! रेती फिरे, बस जाओ... रेती ऐसी होती है न ? बापू ! ऐसा मार्ग नहीं है, भाई ! यह मार्ग परमात्मा का, केवली ने कहा हुआ मार्ग दूसरा है, भाई !

तब तक श्रद्धान कर्तव्य है, ऐसा पाठ है। पालन न किया जा सके, चारित्र न हो सके... समझ में आया ? तो श्रद्धा ऐसी रखना, गड़बड़ करना नहीं, (वरना) मिथ्यात्व में जाकर भटकना पड़ेगा। समझ में आया ? अष्टपाहुड़ में भी है। ३३१ पृष्ठ, उस दिन कहा था न ? ३३१, वहाँ भी श्लोक कहते हैं '....' जो चारित्र का मार्ग है, जो केवलज्ञानी का मार्ग है, जो मार्ग वीतराग का है, उस अनुसार तू कर नहीं सके तो श्रद्धा तो करना 'सक्कइ' शक्ति होवे तो करना। 'न सक्कइ' श्रद्धा करना कि मार्ग यह है। कुमार्ग को मार्ग मानना, मार्ग को कुमार्ग मानना, वह तो मिथ्यात्व है। यह बोले अवश्य, समझे नहीं कुछ भी वापस। शाम, सवेरे पहाड़े बोले। कुसाधु को साधु माने तो मिथ्यात्व... पाँचवें श्रमणसूत्र में आता है। वह बोले थे या नहीं पहाड़े ? आहाहा !

उसमें वापस न्याय दिया है। देखो ! क्या ? सोलह प्रकार के तीर्थंकरगोत्र बँधते हैं न, सोलह प्रकार। उसमें शक्ति त्याग कहा है। ऐसा विकल्प होता है कि शक्ति प्रमाण त्याग करता हो। हठ करके करे, वह मार्ग है ही नहीं। शक्तित्याग तप आता है न ? सोलह

में। शक्तिप्रमाण करना। ऐसे के ऐसे ले लिये व्रत। किसके व्रत ? अभी भान नहीं होता, तेरा व्रत कहाँ से आया ? ले लो व्रत, महाव्रत ले लो, साधु हो जाओ, जाओ। डरो नहीं, भाई ! तुम डरो नहीं। संसार छोड़ो, मुनि होओ।

मुमुक्षु : मुनि हुए बिना धर्म कैसे होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सत्य है। धर्म तो चारित्र, वही है। परन्तु मुनिपना चारित्र अर्थात् कहीं समकित बिना आता होगा ? अभी समकित की ठिकाना नहीं होता, श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता, और ले लो मुनिपना। कहते हैं - ऐसा करना नहीं। सच्ची श्रद्धा करनेवाला पावे अजरामर ठाणा। अजर और अमर, जरा और वृद्धावस्थारहित मोक्षपद है, उसे प्राप्त करेगा। अकेले सम्यग्दर्शन से प्राप्त करेगा, ऐसा कहते हैं। वह धर्म का मूल— पहली सीढ़ी है। आहाहा ! चारित्र आये बिना रहे नहीं। यह कहाँ प्रश्न है ? परन्तु यहाँ तो कहते हैं,... वह क्रम-क्रम से चारित्र पाकर मुक्ति पायेगा। लाखों, करोड़ों वर्षों तक समकिती जीव क्षायिक हो और चारित्र न हो। समझ में आया ?

भरत चक्रवर्ती। लो, कहाँ चारित्र था। उन्हें अन्त में हुआ। उनका तो बड़ा आयुष्य था। चौरासी लाख पूर्व का। वह भी तिरासी लाख वर्ष में केवल (ज्ञान) को प्राप्त हुए हैं। समझ में आया ? गृहस्थाश्रम में थे, समकिती थे, छियानवें हजार रानियाँ थी, चक्रवर्ती थे। कहते हैं कि राग आता है, उसे हेय और दुःखदायक मानते हैं। आदरणीय है नहीं और जब तक चारित्र न हो, तब तक मेरी मुक्ति होगी नहीं, ऐसा जानते हैं। समझ में आया ? ...तीर्थंकर आते हैं न ? जिन तीर्थंकरों को सिद्धि निश्चित है, तो भी चारित्र—अन्दर स्वरूप की रमणतारूपी चारित्र के बिना मुक्ति नहीं होती। तीर्थंकर को भी गृहस्थाश्रम में रहे, चारित्र नहीं होता। आहाहा ! अर्थात् यह बाहर का गृहस्थाश्रम छोड़ा, इसलिए चारित्र (हुआ) ऐसा नहीं है। अन्तर में चरणम् इति चारित्र। आत्मा आनन्द भगवान स्वरूप सच्चिदानन्द है, उसमें चरना, चरना अर्थात् रमना, रमना अर्थात् चारित्र। आहाहा ! चारित्र अर्थात् बाहर में वेश बदल डाला, पंच महाव्रत के विकल्प आये, वह चारित्र, (ऐसा नहीं है)। वह तो अचारित्र है। आहाहा ! जगत को भारी कठिन काम। रतिभाई ! ऐसा मार्ग है। भाग्यशाली जीवों को यह मिलता है। ऐसी बात कहाँ है ? समझ में आया ? आहाहा !

जितना किया जा सके, उतना तो वीर्य को स्फुरित करके करना। नहीं हो सके तो

श्रद्धान तो करना। श्रद्धान करनेवाले को केवली भगवान ने... देखो! ऐसा कहा न? **'केवलिजिणेहिं भणियं'** परमात्मा ने कहा है कि वह समकिती है। चारित्र नहीं है, मुनिपने की दशा जो चाहिए, वह मुझे नहीं है। ऐसा मानता है, जानता है, उस श्रद्धा में तो फेरफार नहीं है। यदि श्रद्धा में फेरफार हुआ तो तेरा मूल मिथ्या हुआ। मिथ्यात्व का मूल हुआ, समकित हटकर निगोद का सोपान हुआ। समझ में आया? २१, २२ दो (गाथाएँ) हुई। २३।

गाथा-२३

अब कहते हैं कि जो ऐसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित हैं, वे वंदन करने योग्य हैं-

दंसणणाणचरित्ते तवविणये [1]णिच्चकालसुपसत्था।
एदे दु वंदणीया जे गुणवादी गुणधराणं।।२३।।

दर्शनज्ञानचारित्रे तपोविनये नित्यकालसुप्रस्वस्था:।
ऐते तु वन्दनीया ये गुणवादिन: गुणधराणाम्।।२३।।

दृग ज्ञान चारित्र तप विनय में सदा सुस्थित जो रहें।
गुणधरों से गुण प्रशंसित वे नित्य वंदन-योग्य हैं।।२३।।

अर्थ - **दर्शन-ज्ञान-चारित्र, तप तथा विनय इनमें जो भले प्रकार स्थित हैं, वे प्रशस्त हैं, सराहने योग्य हैं अथवा भले प्रकार स्वस्थ हैं लीन हैं और गणधर आचार्य भी उनके गुणानुवाद करते हैं, अत: वे वन्दने योग्य हैं। दूसरे जो दर्शनादिक से भ्रष्ट हैं और गुणवानों से मत्सरभाव रखकर विनयरूप नहीं प्रवर्तते हैं वे वंदने योग्य नहीं हैं।।२३।।**

गाथा-२३ पर प्रवचन

अब कहते हैं कि जो ऐसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित हैं, वे वंदन करने योग्य हैं... तीन इकट्ठे होकर चारित्र हो, वह वन्दन करने योग्य है। साधुरूप से

१. पाठान्तर ह्न णिच्चकालसुपसत्ता

चारित्रवन्तरूप से, मोक्ष के मार्गरूप के चारित्रवन्त के गुरुरूप से वे वन्दन करनेयोग्य हैं। समझ में आया?

दंसणणाणचरित्ते तवविणये णिच्चकालसुपसत्था।
एदे दु वंदणीया जे गुणवादी गुणधराणं।।२३।।

दर्शन-ज्ञान-चारित्र,.. आत्मा के स्वरूप का सम्यग्दर्शन और उसे चारित्र ऐसा हो, उसकी भी प्रतीति उसे आ गयी है। उसका ज्ञान-आत्मा का स्वसंवेदन ज्ञान। शास्त्र-ज्ञान की यहाँ बात नहीं है। भगवान ज्ञान का ज्ञान। चैतन्यज्ञानस्वरूपी प्रभु का ज्ञान और उसका चारित्र। आत्मा आनन्दमूर्ति की रमणता। आत्मा में आतमराम। 'निजपद रमे सो राम कहिये।' वह आत्मा के निज आनन्द में रमे, उसे चारित्र कहते हैं। आहाहा!

तप... इच्छा का निरोध हो। उसे इच्छा छूट जाए, उसका नाम तप कहा जाता है। वस्तु के भानसहित, हों! अकेला तप तपे, वह तप नहीं है; वह तो बालतप और अज्ञानतप है। समझ में आया? महाव्रत के परिणाम, वे धर्म हैं, वे चारित्र हैं - ऐसा माननेवाले मिथ्यादृष्टि को तो तप हो नहीं सकता। वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? चारित्र नहीं है, वहाँ तप कहाँ से आया? चारित्र, स्वरूप की दृष्टिपूर्वक अन्दर रमणता है और उसे इच्छा टूटकर अमृत की उग्रता आती है। 'तपयन्ति इति तप:' आत्मा तपता है। ऐसे सोना जैसे गेरु से शोभता है, सोना-सोना गेरु से शोभता है; उसी प्रकार भगवान आत्मा चारित्रसहित उग्र पुरुषार्थ से स्थिरता द्वारा शोभता है। उसे तप कहा जाता है। आहार को छोड़ना और यह छोड़ूँ, वह तो सब लंघन है। समझ में आया?

विनय... सच्चे वीतराग का मार्ग और उसके समकिती ज्ञानी और चारित्रवन्त की विनय। अज्ञानी का विनय नहीं। समझ में आया? **इनमें जो भले प्रकार स्थित हैं, वे प्रशस्त हैं, सराहने योग्य हैं...** ऐसे हों, वे अनुमोदन करनेयोग्य हैं। ऐसे हों, वे सराहने योग्य हैं। **अथवा भले प्रकार स्वस्थ हैं लीन हैं...** स्व.. स्व.. यह आत्मा आनन्द, ऐसा स्व; उसमें स्थ-लीन। स्व-स्थ। स्व ऐसा चैतन्य भगवान, उसमें लीन अर्थात् स्थ। आहाहा! यह शरीर-देह तो हड्डियाँ हैं, मिट्टी है और पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, वह तो विकार है। उसमें टिकना, वह चारित्र नहीं है, वह विनय नहीं है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)